ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

जैन धर्म व कर्म सिद्धान्त

Dr. Nidhi Jain* Assistant professor, S.S. Jain Subhodh College, Jaipur Rajasthan.
*Corresponding Author

Dr. Jubeda Mirza Assosiate Professor, Govt. P.G. College Sikar.

प्राणी जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। मोटे तौर पर यही कर्म सिद्धान्त[1] का अभिप्राय है। इसे जैन, सांख्य, योग, नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसक आदि आत्मवादी दर्शन तो मानते ही हैं, किन्तु अनात्मवादी बौद्ध भी मानता है। किन्तु ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी दोनों में कर्म के स्वरूप और उसके फल देने के सम्बन्ध में मौलिक मतभेद है। जीव और कर्म का सम्बन्धअनादि है। कर्म के दो भेद है – द्रव्य कर्म और भाव कर्म। जीव से सम्बद्ध कर्म पुद्गलो को दव्य कर्म कहते है और दव्य कर्म के प्रभाव से होने वाले जीव के राग द्वेष रूप भावों को भाव कर्म कहते है। द्रव्य कर्म भाव कर्म का कारण है और भाव कर्म द्रव्य कर्म का कारण है। न बिना द्रव्य कर्म के भाव कर्म होते है और न बिना भाव कर्म के द्रव्य कर्म होते हैं।

जैन दर्शन में कर्म से मतलब जीव की प्रत्येक क्रिया के साथ जीव की ओर आकृष्ट होने वाले कर्म परमाणुओं से है। ये कर्म परमाणु जीव की प्रत्येक क्रिया के साथ जिसे जैन दर्शन में योग के नाम से कहा गया है, जीव की ओर आकृष्ट होते है और आत्मा के रागद्वेष और मोह आदि भावों का जिन्हें जैन दर्शन में कषाय कहते है निमित्त पाकर जीव से बंध जाते है। इस तरह कर्म परमाणुओं को जीव तक लाने का काम जीव की योगशक्ति करती है और उसके साथ बन्ध कराने का काम कषाय अर्थात् जीव की राग–द्वेष रूप भाव करते हैं।

इस तरह जीव की योगशक्ति और कषाय ही बन्ध का कारण है। कषाय के नष्ट हो जाने पर योग के रहने तक जीव में कर्म परमाणुओं का आस्रव आगमन तो होता है किन्तु कषाय के न होने के कारण वे ठहर नही सकते।

इस प्रकार योग और कषाय से जीव के साथ कर्मपुद्गलों का बन्ध होता है। यह बन्ध चार प्रकार का है – प्रकृति बन्ध, प्रदेश बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध। बन्ध को प्राप्त होने वाले कर्म परमाणुओं में अनेक प्रकार का स्वभाव पड़ना प्रकृति बन्ध है। उनकी संख्या का नियत होना प्रदेश बन्ध है। उनमें काल की मर्यादा का पड़ना कि ये अमुक काल तक जीव के साथ बंधे रहेंगे स्थिति बन्ध है और उनके फल देने की शक्ति का पड़ना अनुभाग बन्ध है। प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध तो योग से होते है और स्थिति बन्ध तथा अनुभाग बन्ध कषाय से होते है।

इनमें से प्रकृति बन्ध के आठ भेद हैं – (1) ज्ञानावरण (2) दर्शनावरण (3) वेदनीय (4) मोहनीय (5) आयु (6) नाम (7) गोत्र (8) अन्तराय।

इनमें ज्ञानावरण कर्म जीव के ज्ञानगुण को घातता है। इसी से कोई अल्पज्ञानी और कोई विशेषज्ञानी देखा जाता है। दर्शनावरण कर्म जीव के दर्शन गुण को घातता है। आवरण ढांकने वाली वस्तु को कहते है अर्थात ये दोनों कर्म के ज्ञान और दर्शन को ढांकते है उन्हे प्रकट नही होने देते। वेदनीय कर्म जो सुख और दुःख का वेदन अनुभव कराता है। मोहनीय कर्म जो जीव को मोहित कर देता है। इसके दो भेद है एक जो जीव को सच्चे मार्ग का भाव नही होने देता है और दूसरा जो सच्चे मार्ग का भान हो जाने पर उस पर भी चलने नहीं देता । आयु कर्म जो अमुक समय तक जीव को किसी एक शरीर में रोके रहता है इसके छिद जाने पर ही जीव की मृत्यु कही जाती है। नाम कर्म जिसकी वजह से अच्छे या बुरे शरीर और अंग उपांग वगैरह की रचना होती है। गोत्र कर्म जिसकी वजह से जीव उच्च कुल या नीच कुल का कहा जाता है। अन्तराय कर्म जिसकी वजह से इच्छित वस्तु की प्राप्ति में रुकावट पैदा हो जाती है।

घाति – अघाति कर्म :– इन आठ कर्मों में से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घाति कर्म कहे जाते हैं क्योंकि ये जीव के स्वाभाविक गुणों को घातते है। शेष चार कर्म अघाती कहे जाते है, वे जीव के गुणों का घात नहीं करते है।

जीवन का ध्येय मोक्ष –

मुक्ति या मोक्ष शब्द का अर्थ छुटकारा होता है। अतः आत्मा के समस्त कर्म बन्धनों से छूट जाने को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष का दूसरा नाम सिद्धि भी है। सिद्धि शब्द का अर्थ 'प्राप्ति' होता है। जैसे धातु को गलाने तपाने वगैरह से उनमें से मल आदि दूर होकर शुद्ध सोना प्राप्त हो जाता है। वैसे ही आत्मा के गुणों को कलुषित करने वाले दोषों को दूर करके शुद्ध आत्मा की प्राप्ति को सिद्धि या मोक्ष कहते है।

कर्म मल से छुटकारा पाये बिना आत्मा शुद्ध नहीं होती, अतः मुक्ति और सिद्धि ये दोनों एक ही अवस्था के दो नाम है जो दो बातों को सूचित करते है। मुक्ति नाम कर्मबन्धन से छुटकारे को बतलाता है और सिद्धि नाम उस छुटकारे के होने से शुद्ध आत्मा की प्राप्ति को बतलाता है। अतः जैन धर्म में न तो आत्मा के अभाव को ही मोक्ष कहा जाता है जैसा बौद्ध लोग मानते है और न आत्मा के गुणों के विनाश को ही मोक्ष कहा जाता है जैसा वैशेषिक दर्शन मानता है। जैन धर्म में आत्मा एक स्वतन्त्र द्रव्य है जो ज्ञाता और दृष्टा है, किन्तु अनादि काल से कर्म बन्धन से बंधा हुआ होने के कारण अपने किये हुए कर्मो का फल भोगता रहता है जब वह उस कर्मबन्धन का क्षय कर देता है तो मुक्त कहलाने लगता है।[2]

मुक्त अवस्था में उसके अनन्तज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि स्वाभाविक गुण विकसित हो जाते है। जैसे स्वर्ण में से मल इत्यादि निकल जाने पर उसके स्वभाविक गुण पीतता वगैरह ज्यादा विकसित हो जाते है इसी से शुद्ध सोना चमकदार और पीला होता है वैसे आत्मा में से कर्ममल के निकल जाने से आत्मा के स्वाभाविक गुण निखर उठते है। मुक्त होने के बाद यह जीव ऊपर को जाता है। चूँकि जीव का स्वभाव ऊपर को जाने का है जैसा कि आग की लपटे स्वभाव से ऊपर को ही जाती है। अतः अपने उस स्वभाव के कारण ही मुक्त जीव ऊपर को ही जाता है। लोक के ऊपर अग्रभाग में मोक्ष स्थान है जिसे जैन सिद्धांत में सिद्धशीला भी कहते है। सब मुक्त जीव मुक्त होने के बाद ऊर्ध्वगमन करके इस मोक्ष स्थान में विराजमान हो जाते है। जैन सिद्धान्त में मोक्ष स्थान की मान्यता भी अन्य सब दर्शनों से निराली है।

इसका कारण यह है कि वैदिक दर्शनों में आत्मा को व्यापक माना गया है अतः उन्हे मोक्ष स्थान के सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता नहीं थी। बौद्ध दर्शन में आत्मा कोई स्वतंत्र तत्व नही है। अतः उनके लिए मोक्ष स्थान की चिन्ता ही व्यर्थ थी। किन्तु जैन दर्शन आत्मा को एक स्वतंत्र तत्व मानने के साथ व्यापक न मानकर प्राप्त शरीर के बराबर मानता है। इसलिए उसे मोक्ष स्थान के सम्बन्ध में विचार करना पड़ा। वह कहता है कि मुक्त जीव बन्धन से छूटकर उर्ध्वगमन करता है और लोक के अग्रभाग में पहुँचकर स्थिर हो जाता है, फिर वहाँ से लौटकर नहीं आता।

सन्दर्भ सूची

1 तत्त्वार्थसार, 5/177
2 तत्त्वार्थराजवार्तिक, 3/10/181/6